सिन्ध के अंतिम सम्राट महाराजा दाहरसेन

सिन्ध प्रदेश भारत का प्राचीनतम प्रदेश था। सिन्धु नदी के किनारे संसार की प्राचीनतम शास्त्र वेद ऋचायें। सिन्धु शब्द का अपभ्रंश होकर हिन्दु हुआ और उसी से इस देश का नाम हिन्दुस्थान पडा।

सतयुग के समय दक्ष प्रजापति नामक राजा का दोहिता हण्यकश्यप सिन्ध का राजा था। उनके राज्य ककी राजधानी अब के मुलतान शहर में थी। उस समय उसे कैश्यपपुरी के नाम से पुकारा जाता था। कैश्यप के बडे राजकुमार प्रहलाद के चार भाई थे जो क्रमशः सिंहासन पर बैठे। सिन्धु घाटी की सभयता :- उन राजाओं कके बाद पुराणों में श्रीवास्त नामक कौशल राज्य का नाम आता है। जिनके बृहद शिव नामक पुत्र था, जिसने सिन्ध पर राज्य किया। महाराज गांधार नामक एक चंद्रवंशी क्षत्रियों को जीत कर सिन्ध पर राज्य करना प्रारंभ किया। अयोध्या के राजा ने इनकोयहां से भगा दिया अतःवे पश्चिम उत्तर में गांधार नगर बसा कर राज्य करने लगे।

कौरवों के बहनोई महाराज जयद्रथ का वर्णन महाभारत में कई बार आया है। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को मारा था बदले में अर्जुन ने प्रतिज्ञा कीऔर समय रहते सिन्ध के पराक्रमी महाराज जयद्रथ का वध किया। माहन जोदडों की खोज ने सिन्ध की प्राचीन संस्कृति,सभयता,साहित्य,ज्ञान,कला आदि पर प्रकाश डाला है कि जिस समय संसार के लोग अपढे लिखे,नंगे घूमते थें उस समय सिन्धु की सभ्यता कितनी विकसित हो चुकी थी।
आज की तरह सिन्ध प्रदेश इतना छोटा नहीं था। उसकी सीमायें उत्तर में कशमीर-कन्नौज,पंजाब,तक, दक्षिण में देवल कराची बंदरगाह और कच्छ तक फैली हुई थी। यहां के निवासी संपन्न,धनी,अतिथि सत्कार करने वाले, वैज्ञानिक व चतुर थें। बाहर के लोगों की द्दष्टि इस प्रदेश पर थी। सिन्ध पर 'खैबर' उत्तर पश्चिम ससे आक्रमण होते रहे। कहावत बन गई कि ' सिन्धडी,सिन्धडी ! आपको खैबर से भय। ''
स्वतंत्रता के यज्ञ में :- ईस्वी सन से 327 वर्ष पूर्व अत्याचारी सिकन्दर बादशाह ने अचानक सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध के धर्मयुद्ध लडने वाले सिपाही विदेशियों से बिल्कुल अनभिज्ञ थें। सिन्धु राज ने बहादुरी दिखाई लेकिन ऐसे धोखेबाज युद्ध में उन्हें समझौता करना पडा। सिन्ध के स्वाभिमानी ब्राह्याणों को यह बात उचित नहीं लगी,गांव-गांव में घूमकर सिन्ध कीजनता में स्वाभिमान जगाया, सिप्धी रगों को रक्त उबला,सिकन्दर के पीठ दिखाते ही हजारों ग्रीक सिपाहियों को मौत के घाट उतारा, सिन्धी केसरी ध्वजा लहराया गया।

सिन्धु राज और सिन्धवासियों की बगावत को सुनकर सिकन्दर गुस्से में गर्म होकर लाल हो गया,लौटकर फिर उसने आक्रमण किया और ब्राह्मणों को चुन-चुन कर मारा,जिसमें लगभग अस्सी हजार ब्राह्ममणों को स्वतंत्रता के यज्ञ में स्वाहा होना पडा। सिकन्दर के बाद ईस्वी सन 163 वर्ष पूर्व मगध देश,गुजरात,कठियावाड पंजाब,मथुरा सिन्धु आदि पर मनीन्दर के बाद सात यवन बादशाहों के आग्रमण हुये लेकिन सिन्ध से किस बाहशाह का कितना संबंध रहा यह इतिहासकारों के लिये खोज का विषय हैं।

इन यवन राजाओं के अलावा,तुषार शक जाति के राजाओं ने भी आक्रमण किया उन को संस्कृत ग्रंथों में तूषार निशक और देवपुत्र के नाम सेसंबांधित किया गया है। उस समय हिन्दुओं की पाचन क्रिया प्रबल थी, उन्होने आत्मसात कर हिन्दू बना दिया।
राज्य संचालन :- सिन्धु परअरबों के आक्रमण से लगभग डेढ सदी पूर्व रादेवल नामक एक हिन्दू राजा सिन्ध पर राज्य करता था। उसके बाद राय सहरास पहला,राय सहिराम, दूसरा क्रमशःसिंहासन पर बैठे। राय घराने से उन राजाओं ने कुल 137 वर्षो तक सिन्ध पर राज्य किया।

चच, राय साहसी दूसरे का मंत्री था। हासी के मरने के बाद चच ने उनकीविधवा रानी सहंदी से विवाह किया। सप 622 ईस्वी में सिंहासन परबैठा। राजा चच नने अपने छोटे भाई चंद्र को प्रधान मंत्री बनाया और स्वंय अपने राज्य कीनिगरानी करने और भारी सेना साथ लेकर राज्य की सीमायें बढाने निकल पडा। थोडे समय के बाद राजा चच मकरान की ओर बढा इस प्रांत पर भी अपना झंडा फहराया, सिन्ध पर महाराज चच का राज्य सन 671 ईसवी तक शांत,स्वाभिमान,न्याय और ठाट से चलता रहा।

दाहरसेन ने बारह वर्ष कीअल्पायु में बागडोर संभाली। उनके तरुणावस्था तक उनके चाचा इंद्र राज्य की व्यवस्था सुचारु रुप से चलाने में सहयोग दिया। किन्तु ऐसा अधिक समय तक नहीं हो सका। दाहरसेन के सिंहासनारुढ होने के छः वर्ष बाद ही चंद्र की मृत्यु हो गई तब मात्र अठारह वर्ष की आयु में राज्य संचालन का संपूर्ण भार उन पर आ गया।

सिन्धुपति महाराज दाहरसेन ग्रीष्मकाल का समय रावर नामक स्थान में व्यतीत करते। सर्दी के मौसम में ब्रह्मणावाद तथा बंसत ऋतु में अलोरअरोडा में व्यतीत करते थें।

इस्लामी सेना ने अनेकों बार हिन्दुस्तान एवं सिंध पर पांचवी सदी में ही आक्रमण कर दिये थें, हर बार उन्हें हार का सामना करना पडा था। उन्हें जान से हाथ धोना पडा था। अंत में अरब के खलीफे ने अपने नौजवान भतीजे और नाती, इमाम अलदीन मुहम्मह बिन कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर आक्रमण के लिये710 ई. में भारी सेना के साथ रवाना किया। यह सेना कुछ समुद्री मार्ग से और मकरान के रास्ते सिन्ध की ओ बढी। अंत में मूहम्मद बिन कासिम का भारी लश्कर मुहर्रम माह के दसवीं तारीख,ईसवी सन 711 में सिंध के देवल बंदरगाह पर पहुंचा। धरा धंसेगी :- दुर्भाय से देवल बंदरगाह का प्रतिनिधि ज्ञानबुद्ध, बौद्धी मत का अहिंसा का उल्टा अर्थ समझ कर युद्ध से भयभीत हो गया, भ्रम में आकर ज्ञानबुद्ध ने कियले के दरवाजे खोल दिये। फलस्वरुप बडी सरलता से मुहम्मह बिन कासिम की सेना ने देवल बंदरगाह पर अपना कब्जा कर लिया।

शिरोमणि सिन्धुपति महाराज दाहरसेन भारत का वीर,सरहदों का राखा,हिन्दू कुल रक्षक था। तीरंदाजी और हिम्मत के लिये प्रसिद्ध था। आपकेपास भारी मजबूत धनुष था जिस पर आपके अलावा कोई वाण नहीं चढा सकता था स्थिति का मुकाबला करने के लिये महाराज रादरसेन ने सिन्ध केकोने कोनेमें सन्यासियों को भेजा,जिन्होने देशभक्ति की ज्वाला सिन्ध के गांव-गांव में जगा दी। देशप्रेम समुद्र की लहरों के समान उछलने लगा,देश के मजनू गाने लगे

जब रण करने को निकलेगें,स्वतंत्रता के दीवाने।
धरा धंसेगी,प्रलय मचेगा,व्योम लगेगा थर्राने ॥

सिन्ध के नवजागरण का समाचार मुहम्मह बिन कासिम के गुप्तचरों व्दारा मिल गया कि अगर इन पर आक्रमण किया गया तो एक भी अरब जीवित नहीं लौट पायेगा। मुहम्मद बिन कासिम ने सिपाहियों और गुप्तचरों कहा कि सिन्धियों की हिम्मत को तोडना या आमने सामने युद्ध में जीतना संभव नहीं हमें छल कपट का सहारा लेना होगा। लोगों को ठिकाने,जागीर,पद, सोने मुहरों की लालच देकर खरीदना होगा। प्रदेश में अफवाह,राजा के प्रति अविश्वास फैलाकर लोगों को भ्रमित करना होगा।
मंदिर तोडा :- महाराज दाहरसेन की सेना में मुहम्मद अलाफी जो हजाज के यहां से भागकर शरणागत हुआ था, उसके पास कुछ गुप्तचर भेजकर उसे उन्होने अपने पक्ष में कर लिया। राजा दाहर के मंत्री मोक्षवास के पास सोना मुहरें लेकर मुहम्मद बिन कासिम के कुछ लोग पहुंचे और जीतने के बाद माला माल किये जाओगे। शर्ते बताई लालच में आकर इन्होने भी समय पर सहायता करने का वायदा कर दिया। महाराजा दाहरसेने का सेनापति शमनी भी शमनी भी अरबों के षडयंत्र में शामिल हो गया, उसने समय पर मुहम्मह बिनकासिम को सहायता देने का वायदा किया।

मोको पुत्र बसायो,जिसकों मोक्षबास भी कहते थे, के भाई रासलो ने भी गददारी की। उन्होने मुहम्मद बिनकासिम को नदी पार कराने में सहायता की। महाराज दाहर के पुत्र जयसिंह ने रासल पर विश्वास रखकर उनको सुरक्षा करने की जिम्मेदारी दी लेकिन उसने शत्रुओं को साथ दिया।मुहम्मह बिन कासिम ने नीरनक्रेट हैदराबाद सिन्ध पर आक्रमण किया। नारायणकोट नीरन कोट के प्रतिनिधि शमानी ने वायदे के अनुसारकिले के दरवाजे खोल दिये और शरण में चले गये। मुहम्मद बिन कासिम ने बुद्ध धर्म के मंदिर को तोडकर उसके स्थान पर मस्जिद खडी की, एक मौलवी को नियुक्त किया।

क्रमशः ...2...

गाजर मूली की तरह :–मुहम्मद बिन कासिम रावनगर कीओर बढा। चितोर में महाराजा दाहर के सामने युद्ध हुआ। 9 दिनों तक भयंकर युद्ध चला। राजादाहरसेन हाथी पर बैठकर घुडसवार,पैदल सेना,हाथी लेकर,नागडे बजाते,झंडाफहराते,तीरों से अरब सेना का सफाया करते आगे बढते ही गये। महाराज दाहरसेन का पुत्र जयसिंह भी बहादुरी से आगे बढ रहा था। योद्धाओं ने तलवारों और तीरों से काफी अरब सेना के हौसले पस्त किये। राजा दाहरसेन के हाथ में एक चक्र था। सुदर्शन चक्र की तरह,व चक्र लोगों को अपनी ओर खींच कर शरीर से सर को गाजर मूली की तरह अलग कर रहा था यह चक्र जहां भी फेंका जाता वहां सिपाही घोडा अथवा पैदल सिपाही सबका सिर धड से अलग होकर वापस राजा के हाथ में आता था।

अरब सेना में भय और आंतक फैला दिया गया। अंततः अरब सेना में निराशा व्याप्त हो गई। मुहम्मद बिन कासिम को विश्वास हो गया कि युद्धमें मारा जाउंगा, उसने स्वयं के बाद के वारिसको काम संभालने का संकेत दे दिया कि अम्बर महरजेन वारिस हो अगर वह भी मारा जाये तो अमीर सय्यद उसकेबाद का वारिस होगा आदि।

राजा दाहर सेन की व्यूह रचना उच्चकोटि की थी जिससे उनकी युद्ध कौशलता तथा वीरता का अंदाजा लगाया जा सकता है स्वंय अरब लेखकभी उनकी प्रशंसा किये बना नहीं रह सके।

छल किया गया :– अरब सेना ने एक बीर शजाअ हव्शी ने अपना घोडा राजा दाहरसेन के हाथी के साथ सटाकर हाथी की सूंड पर घोडे के पांव रखकर राजा दाहरसेन पर आक्रमण करने की सोची लेकिन घोडा हाथी के सामने भडक गया। हव्शी ने पगडी उतारकर घोडे की आंखे बांध दी,हाथी को घोडा घायल कर चुका राजा दाहर ने देख लिया उन्होने देशनाना तीर चलाकर हव्शी का काम तमाम कर दिया।

मोक्षवास मोका पुत्र बसामो ने मुहम्मद बिन कासिम से विचार विमर्श करके धोखे और चालबाजी से महाराजा दाहरसेन को पराजित करना चाहा,इसे कार्यक्रम देने के लिये अरब सेना के कुछ पुरुषों ने महिलाओं के वस्त्र पहने तब वे महिलाओं की तरह सहायता के लिये चिल्लाने लगी, यह आवाज बायी ओर से सुनाई दी। उनकी चिल्लाहट सुनकर राजा दाहरसेन ने कहा ''मैं यहां हूं आप लोग मेरी ओर आओ,'' आवाज आई,'' हम महिलायें आप की प्रजा हैं,अरब सेनायें गिरफ्तार कर हमें ले जा रही है....,''दाहरसेन ने कहा है मैं जीवित हूं और मेरे जीते जी ऐसा नही हो सकता। वे उनकी करुण पुकार को सुन कर द्रवित हो उठे ,अतःवे सहायता के लिये आगे बढे।

मुहम्मद बिन कासिम ने देखा कि महाराजा दाहरसेन स्वंय की सेना से कुछ दूर आ गये हैं,गददरों ने हाथी की पालकी में अग्नि बाण सेना से कुछदूर आ गये हैं,गददरों ने हाथी की पालकी में अग्नि बाण छोडे उसकी गर्मी से हाथी क्रोधित हो उठा। वह सेना को कुलचता हुआ राजा दाहरसेन को लेकर नदी की ओर बढा महावत ने हाथी को संभालने का प्रयत्न किया लेकिन वह काबू में नहीं आ सका,महाराजा को गंभीर चोटे आई, तीन दिन के पश्चात उनकी मृत्यु 16 जून 712 ई. में हुई।

सतीत्व की रक्षा :– उसके पश्चात उसकी बहन पउमा देवी और धर्मपत्नी लाडी बाई लाडिली ने तलवार उठाई।किले के उंचे स्थान से खडी होकर उसने अपने सैनिको का आहवान किया किन्तु थोडी देर तक ही वह शत्रुओं की बडी सेना को रोक सकी,महारानी ने भांप लिया कि अब उसकी हार निश्चितहै दुश्मनों के हाथ न आयें, नारीत्व की रक्षा के लिये अन्य स्त्रियों के साथ अन्तः पुर में चिता में जलकर जौहर कर सतीत्व की रक्षा की।

इसी घटना से प्रेरित होकर राजस्थान की बीर नारियों ने कालान्तर में सिंधी बहनों की सतीत्व प्रथा को अपनाया,प्रारंभ में सिन्धी नारी ने भारतीयपवित्रता धर्म कीपेशानी पर सुंदर तिलक लगाया। राजकुमार जयसिंह और छोटे राजकुमार ने भी बहादुरी से काफी समय तक मुहम्मद बिन कासिम का मुकाबलाकिया। अंत में दो सुपुत्रियां जो जीवित गिरफ्तार हुई सूर्य एवं परमाल ने अरब में जाकर खलीफे के सामनेशिकायत का बहाना कर मुहम्मद बिन कासिम कोखलीफे के सामने व्दारा मरवाकर प्रतिशोध लिया, और अंत में एक दूसरे को कटारे घोंप कर अमर शहीद होकर सतीत्व की रक्षा की।

इतिहासकारों से :– मुस्लिम लेखकों के अनुसार सिंधी वीरों ने सिंध में कई खंड स्वतंत्र करा लिये , इस प्रकार अरब सेना केकब्जे में केवल देवल बंदरगाह के आस पास का थोडा क्षेत्र बच सका था। लगभग 283 वर्षो तक अरबों की सिंध के कतिपय छोटे मोटे हिस्सों पर प्रत्यक्ष अपरोक्ष रुप से पकड रही,सिन्ध के राजा स्वंतत्र हो गये विशेष कर मुलतान और ब्रह्मणावाद में उनका प्रभाव था। राजा दलोराय का राज्य अब भी सिंधियों के दिलों से विस्मृत नही हुआ है।

फिर मुसलमानों का प्रभाव ग्यारहवीं सदी में देखने को मिला हैं, ''इन चार सौ वर्षो में किन वीर सिंधियों ने सातवीं से ग्यारहवीं सदी तक मुसलमानों के हमले रोके रखे इतिहास के पृष्ठ उस युग के शौर्य एवं बलिदान के मुकसाक्षी हैं, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। आने वाले इतिहासकारों को उनकी खोजबीन चालू रखनी है,यही नम्र निवेदन है।

अंतिम सम्राट सिंन्धपति महाराज दाहरसेन और जौहर ज्वाला में जलने वाली नारियों को बार–बार प्रणाम !

सिंधी साहित्य की त्रिमूर्ति:शाह, सचल व सामी

सछ्खराम दास (सुखदेव साधवानी)
एम.ए. (सिंधी), फैजाबाद

जिस तरह से किसी भवन की मजबूती उसकी नींव व खम्भ पर निर्भर करती है, उसी प्रकार सेसिंधी साहित्य की नींव में शाह, सचल व सामी की भूमिका रही है। हिन्दी पद्य साहित्य में शाह, सचल व सामी का नाम गिना जाता है, ये तीन कवि सिंधी साहित्य के महान कवि हैं, सिंधी साहित्य का जिक्र आते ही इन तीन कवियों का नाम बरबस ही मुख पर आ जाता है। इस त्रिमूर्ति के बिना पूरा सिंधी पद्य साहित्य अधूरा माना जाता है। शाह साहब का पूरा नाम शाह अब्दुल लतीक है ये सूफी मत के कवि थे इनका जन्म 1789 ई. में सिंध में हाला हवेली में हुआ था। इनके पिता का नाम शाह हबीब था। 20 वर्ष की आयु में शाह साहब घर पर बिना बताए निकल पडे व जोगियों तथा संन्यासियों के साथ हो लिए उनके साथ वे तीन सालों तक घूमते रहे उन्होंने दुनिया को देखा व अनुभव किया जिन–जिन स्थानों पर वे गये उन स्थानो का वर्णन उनकी रचनाओ में मिलता है। शाह साहब की मुख्य कृति '' शाह जो रसालो '' है, जो कि एक ऐतिहासिक ग्रंथ है इसे जगत व ब्रह्म के भेद को रुपकों द्वारा समझाया है इसमें कुल मिलाकर 30 सुर हैं जो सिंधी लोक कथाओं के आधार पर हैं। शाह साहब ने सिंध की सात लोक कथाओं ससुई –पुन्दूं, ममलराणो, सुहिणी मेहार, लीला चनेसर, नूरी–जाम तमाची, सोरठि, राई डियाच व उमर मारुई का आधार बनाकर व उनके उदाहरण देकर सूफीवाद का संदेश दिया है।

सुर ससुई में ससुई–पुन्हूं की लोक कथा को आधार बनाकर व लिखते है –

पेही जा पाग में कयमि रुह रिहाण,
तन को डूंगर डेह में, नका केचियुनि काण,
पुन्हूं थियसि पाण, ससुईअ तां सूर हुआ।

ससुई जो पुन्हूं के वियोग में दुखी थी कहती है, जब मैंने भीतर झांककर देखा तो मुझे लगा कि मैं पुन्हूं से अलग नहीं हूँ। कोई पहाड़ मेरे और पुन्हूं के बीच बाधा नहीं है। मैं खुद पुन्हूं हो गयी हूँ। जब मैं अपने को अलग ससुई मानती थी तब मैं दुखी थी।इस बैठ से शाह साहब ने आत्मा व परमात्मा के मिलन की बात समझाई है कि जब आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है तो जीव के सारे दुख व कष्ट समाप्त हो जाते हैं व जीव जन्म मरण क बंधन से मुक्त हो जाता है।

सचल –

शाह साह के बाद जिस कवि का नाम आता है वे हैं सचल। जिन्हें लोग सचल सरमस्त के नाम पुकारते हैं। इनका पूरा नाम अब्दुल वहाब है सचल इनका उपनाक है, ये अपने उपना से ही जाने जाते हैं। इनका जन्म सिंध के खैरपुर रियासत के दराज गाँव में हुआ था, इनके पिता का नाम सलाहअलदीन था, बचपन में ही इनके पिता की मृत्यु हो गयी इनके चाचा ने इन्हें पालकर बड़ा किया। सचल सरमस्त जब 13 वर्ष के थे तभी शाह लतीफ दराज गाँव में गये थे , उन्होंने सचल को देखकर कहा – '' हमने जो देगची चढ़ाई है उसका ढक्कन यह बालक उतारेगा। ''आगे चलकर उनकी यह बात सच निकल क्योंकि जीव, जगत व ब्रह्म के बीच का संबंध शाह साहब ने सिंधी लोक कथाओं में नायक व नायिकाओं के द्वारा ही समझाया था लेकिन सचल साहब ने इस संबंध को मस्ती में आकर साफ व स्पष्ट शब्दों में भी वर्णन किया है। वे अरबी व फारसी में निपुण थे उनकी अधिकाधिक रचनाएँ सिंधी की उपभाषा सिराइकी में है कुछ रचनाएँ फारसी मे भी हैं। इनकी मुख्य कृति '' सचल सरमस्त जो कला '' है। सचल साहब को गुरु नानक देव व उनकी बीबी में बडा विश्वास था। 90 वर्ष की अवस्था में 1829 में उनका निधन हुआ।

शाह साहब की ही तरह सचल साहब भी सूक्ती कवि थे। वे आत्मा की एकता के गायक थे, जीव, जगत व ब्रह्म के सम्बंध को उन्होंने खुले शब्दों में समझाया है इन्होंने आत्मा व परमात्मा के संबंध को देखा, परखा व अपने काव्य में शामिल किया सचल साह ने अपने समय के सतांध शासको व मौलवियों का भी विरोध किया है।

सचल सरमस्त ने अद्वैत का संदेश देकर समन्वयवादी प्रेम को अपने ह्दय में स्थान देने की बात कही व कहते हैं –

जजहबनि मिली मुल्क में, माण्हूं मुंझाया,
शेखी, पीरी , बुजुर्गी, बहद ई भुलाया,
के नामज निवडी पढनि, किनि मदिर बसाया,
ओड कीन आया, इ अक्ल वारा इश्क रखे

अर्थात् – मजहबों और धार्मितक सम्प्रदायों ने सम्प्रदायों ने मिलकर इस मुल्क के लोगों को गुमराह किया है। शेखों, पीरो–फकीरों ओर अन्य वयोवृद्धों ने उन्हें बड़े ही भुलावे में डाल रखा है। कुछ लोग मस्जिदों में झुककर नमाज पढ़ते है और कुछ लोग मंदिरो में जाते है लेकिन वे सभी बुद्धिमान लोग प्रेम के नजदीक नहीं आते।

अतः सचल साहब ने भी ईश्वरीय प्रेम व आत्मा – परमात्मा के संबंध को सर्वोपरि बताया है तथा अद्वैत का संदेश अपने काव्य के द्वारा दिया है।

सामी –सामी साहब का पूरा नाम चैनराई बचोमल सामी था। इनका जन्म सिंध के शिकारपुर में 1743 में हुआ था। अपनी जीविका चलाने के लिये वे शिकारपुर के सेठ टिंडरमलाणी की गढी पर काम करते थे। सेठ जी को कमिशन के तौर कुछ देते थे। उन्हें उस पर सुख व संतोष था, परंतु उनकी पीड़ा और असंतोष का कारण अन्यंत्र था, बचपन से ही बार पढ़ी पर एक साधु आये उन्होंने उठकर उनके चरण छुए और बताया कि पिछली रात उन्होंने सपने में उस साधु के ही दर्शन किये। उसी समय उनके मुख से निकल पडा ––

''ओचितो अची, सश्रणु बीठो साम्हों''

बस यहीं से उनके कवि जीवन का प्रारंभ हुआ तब से वे स्वामी मेघराज नाम उस साधु के सम्पर्क में आए व उनको अपना गुरु मान लिया स्वामी मघराज जी बेदांत व संस्कृज काव्य के पंडित थे उनकी संगत में भाई चैनराह भी वेदांत व संस्कृत काव्य में निपुण हो गये। दस साल तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद भाई चैनराह ने सलोक (श्लोक) लिखना प्रारंभ किया वे सलोक लिखकर एक घड़े में डालते जाते थे।

क्रमशः ...2...

इन्होंने अपने सलोकों की रचना अपने गुरु के नाम '' सामी '' से की है। इसीलिए इनका उपनाम भी सामी ही हो गया। बाद में इनके सलोकों को इकट्ठा करके के रचना बनाई गयी जिसका नाम रखा गया ' सामीअ जा सलोक '।

सामी साहब पूजा उपासना के बाहरी प्रदर्शन व पाखण्ड के विरोधी हैं स्वामी वेदांती कवि है लेकिन वे उस वेद अध्ययन के खिलाफ हैं जिसमें प्रेम व भक्ति को समुचित स्थान न मिला हो। वे लिखते हैं –

''नीहं बिना नादान, वेद पढी वादी थिया''
बाषण कनि बियहि सां, जप – तप दान – स्नान।''

कबीर ने कहा – ''ढाई आखर प्रेम के पढे सो पंडित होय '' सामी भी पोथी के स्थान पर प्रेम को पंडित का लक्षण मानते हैं और कोरे जप – तप, दान–सान में उनकी आस्था नहीं है। सामी के अधिकाधिक सलोक माया व अज्ञान पर है उन्होने लिखा है –

माया भुलाए, विधो जीउ भ्रम में,
अणहूंद दयहि में, गोता नितु खाए,
'सामी' डिसे कीनकी, मुंह मढीअ पाए,
सत्गुरु नागाए, त जागी जुडे पाण सां।

अर्थात माया ने जीव को भुलाकर भ्रम में डाल दिया है। जब तक सत्गुरु जीव को अज्ञान रुपी नींद से नहीं उठाते तब तक वह जीव अपने अंदर छिपे परमात्मा को नहीं पहचान पाता है। अतः आत्मा परमात्मा एक नहीं हो पाते।

अतः सामी साहब ज्ञान मार्गी व वेदांत कवि हैं। जिन्होंने जीव का अज्ञान मिटाकर ज्ञान की तरफ ले जाने का प्रयत्न किया है।

बुजुर्गो की लाठी बनें

अपने घर के बुजुर्ग को अपने सर पर साया समझे बोझ न समझ कर अपनी जिम्मेदारी को उपकार समझ कर ,उनकी देखभाल करने के बजाय प्यार और सेवा से फर्ज समझ कर करे और अपने को धन्य समझे कि आपको सेवा करने का मौका मिला अधिकतर लोग अपने वृद्ध माँ बाप को अपने साथ रखना पसंद नहीं करते, यह कहॉ तक ठीक है। उनका क्या यही कर्त्तव्य है उन्हें तो अपने माता–पिता को अपनी दृष्टि के घेरे में रखकर, उनके दुःख–सुख में हिस्सा ले उनकी खुशी को अपनी समझें। एक अत्यन्त ही खुशनुमा शांति मिलेगी। अपने से दूर रखकर कितनी भी सुख–सुविधा दे फिर भी उनका मन अशात रहता है और हर समय उनकी आँखें उदास रहती है, अपने बच्चों से मिलने की चाहत में वो बेबस लाचार टूट से जाते हैं। जिन्हें दुनिया की कोइ भी खुशी दूर नही कर सकती, सभी के साथ जाकर उन्हें सारी खुशी मिल जाती है और संतुष्टि भी। जिन्होंने जन्म दिया क्यों न हम उनका उपकार माने, मॉ–बाप को नोक शब्द कभी मन में न लाये। उनकी सेवा से बढ़कर कोई पूजा नहीं ऐसा विचार अपने मन में रखें। जब तक वो आपके साथ है आपको कभी भी दुःख का आभास नहीं होगा, जिस तरह वो वहॉं की खुशी के लिए क्या नहीं करते, उसी तरह उनका भी कोई अरमान होगा। जिसे पूरा करना अपना फर्ज समझे बुजुर्गो का आशीर्वाद ले जो हमेशा ही आपके साथ रहेगा। कोई भी बुजुर्ग कहीं भी अकेला या असमर्थ हो थोडा समय दे। उनकी सेवा ईश्वर की सेवा होगी।

ऐसा सभी लोग करे, तो बुजुर्ग कभी भी असहाय नहीं होंगे। और वो मानसिक रुप से कभी भी अस्वस्थ नहीं होंगे। यह याद रखना भी जरुरी है कि बुजुर्ग दया के पात्र नहीं है, स्नेह और विश्वास के हकदार है। आज के युग के लोग ओल्ड एज होम (बुजुर्गो का घर) बनवाते है। और बेसहारा बुजुर्गो को रहने,खाने की व्यवस्थाा करते हैं, जिनका परिवार में कोइ अपना नहीं है। उनकी देख–रेख के लिए नेक काम करते हैं। और वो दर–दर भटकने से बच जाते है, लेकिन जहॉं पर भरा परा परिवार होते हुए भी ओल्ड एज होम का सहारा लेते है, वहॉं रखते हैं, कहॉं तक ठीक है कितने ही दुःख की बात है जिनके बदोलत आज आप उस प्रकार के उस घर में तरक्की की राह पर खडे है और उन्हीं के लिए आपके लिए घर में जगह नहीं है, उनके पास टाईम नही है क्या आप बुजुर्ग नहीं होंगे। और फिर आपके साथ भी कुछ ऐसा होगा तो कल्पना करे कि कितना दुःख होगा। जो बोयंगे वही काटना पडेंगा। काश सभी लोग समझें।

सिन्धी सपूत –श्री संतू शहाणी

श्री संतू शहाणी का जन्म 17 अक्टूबर 1917, हैदराबाद सिंध में हुआ था। आपके पिताजी दीवान बहादुर जे.टी. शहाणी एक रिटायर्ड इंजीनियर थे। सन् 1936 से 1939 तक शिक्षण हेतु लंदन में रहे, जहां आपने बी.एस.सी. डिग्री मैक्नीकल इंजीनियरिंग व मोटिव पावर में लंदन यूनीवर्सटी से पास की। सन् 1942 में आई.ओ.एफ.ओ. इंडियन आर्डेनन्स फैक्ट्रीज आरगनाइजेशन से जुड़ गये। अलग अलग सुपुर्द पदों पर काम करते हुये सन् 1960 मेंअपनी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से डायरेक्टर आफ आर्डेनेन्स फैक्ट्रीज के पद पर पहुंच गये, आप प्रथम आई.ओ.एफ.एस. अधिकारी है जो अल्प समय में ही डी.जी.ओ.एफ. के पद पर पहुंचे और अपने विलक्षण सूझ बुझ से अलग अलग आर्डेनन्स फैक्ट्रीज के कर्मचारियों के रहने के स्तर को ऊंचा उठाया। सबसे कठिन सुपुर्द कार्य था आपका ओ.अफ.आर.सी. आर्डेनेन्स फैक्ट्रीज रि–ओर्गेनाइजेशन कमेटी में सेक्रेट्री के पद पर नियुक्त किया जाना, जिसके तत्कालीन विभागीय अध्यक्ष रक्षा मंत्री बलदेवसिंह जी थे अपनी तीस वर्ष की सेवाओं में जो आवश्यक इमप्रूवमेंट व प्रशासन सुधार हुए वे एतिहासिक पृष्ठ बन गये है। फैक्ट्री कर्मचारियों की विभिन्न शिक्षा, चिकित्सा, आवासीय समस्याओं को सुलझाने में जो भूमिका आपने अदा की उसे भुलाया नहीं जा सकता, यही कारण है कि आपके कार्यकाल में कभी भी हड़ताल नहीं हुई। आप प्रथम डी.जी.ओ.एफ. थे जिन्होंने बेमिसाल इनसेनटिव बोनस एवरेज लाभ 50% से लाभान्वित कर उत्पादन रिकार्ड को उस शिखर पर पहुंचा दिया जिसकी कल्पना किसी को भी नहीं थी यही कारण है कि अब तक के उत्पादन रिकार्ड में एक विराम चिन्ह सा बन गया।

चीन की लड़ाई में दीर्घ प्रयत्नशीलता से अभिनीत भूमिका को आसानी से भुलाया नहीं जा सकता। थल, जल, वायु सेना की अधिकतम रिक्वायरमेंट अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मिशनरी जेल से पूरा किया जिसके लिये अपने स्वास्थ्य की भी परवाह न की, संपूर्ण समय मिशनरी जेल में कार्यरत रहे। राष्ट्रीय चरित्र का जीता जागता बेमिसाल उदाहरण पेश कर अपनी भूमिका को सदा सदा के लिये अविस्मरणीय बना दिया। इसी अतिविशिष्ट सेवाओं के कारण ही आपको दो बार राष्ट्रपति द्वारा पद्म श्री व पदमभूषण से सम्मानित किया गया। वह एक ऐसी रियर डिस्टींगस हानर थी जो एक ही व्यक्ति को तीन वर्ष के अल्प समय में दो बार इस तरह सम्मानित किया गया हो। अपनी त्यागमयी सेवाओं के लिये न केवल आई.ओ.एफ.ओ. से ही याद किये जावेंगे, पर पूरा राष्ट्र इस महान विभूति को भूल नहीं सकता, राष्ट्र इस महान विभूति को भूल नहीं सकता, राष्ट्र के सदा बने ऐसे अभाव की पूर्ति संभव नहीं है, सिंधी समाज को ऐसी बहुमुखी प्रतिभाशाली विभूति पर गर्व है जिन्होंने सिंधी समाज को औरों के सामने ऊंचा कर दिया, यह सिंधी सपूत इस दुनिया को 26 अक्टूबर 1965 को छोड़कर अपनी याद हमारे दिल में सदा सदा के लिये बना गये।

संस्कृत, सिंधी, हिन्दी तथा अंगेजी से ज्ञाता
स्वामी देव प्रकाश जी महाराज

सतगुरु स्वामी देव प्रकाश जी महाराज अत्यधिक तेजस्वी,मिलनसार, सादे सुशील एवं सुलझे हुये मनोहर एवं निर्मल स्वाभाव के धनी है। स्वामी देव प्रकाश जी का जन्म सिंध हैदराबाद (लाड़काना) माता श्री गंगादेवी तथा पिता श्री हुकुमराय के घर हुआ। स्वामी जी का जन्म नाम श्री सन्मुख लाल है। स्वामी जी परिवार वर्तमान में बिलासपुर में है। स्वामी जी 12 वर्ष की आयु से ही प्रेमप्रकाश आश्रम में स्वामी सर्वानंद जी महाराज तत्पश्चात् सत गुरु स्वामी शांती प्रकाश जी महाराज की सेवा में रहे। स्वामी सर्वानंद जी महाराज द्वारा इन्हें वर्ष 1970 में प्रेमप्रकाश मंडल की दीक्षा देकर इनका नामकरण देव प्रकाश जी किया। स्वामी जी ने काशी में संस्कृत उल्हास नगर में सिंधी हिन्दी तथा अंगेजी की शिक्षा ग्रहण की।

स्वामी शांति प्रकाश जी की संगत में रहकर संपूर्ण भारत वर्ष तथा विदेशो की यात्रा कर बहुत अनुभव प्राप्त किया स्वामी देव प्रकाश जी वाद–विवादो से रहित एकांत प्रिय है।

स्वामी शांति प्रकाश जी महाराज पांच तत्वो का शरीर त्यागने के उपरांत आपको प्रेमप्रकाश मंडल मुख दरबार उल्हास नगर का मंहत मनोनीत कर, गद्दी नशीन किया गया। स्वामी जी की प्रेरणा से संत हिरदाराम नगर (बेरागढ़)भोपाल में स्वामी शांति प्रकाश परिषद तथा शांति प्रकाश पुस्तकालय चलाये जा रहे। 16 फरवरी 95 को आपकी उपस्थिति में बैरागढ़ मुख्य मार्ग पर स्वामी शांति प्रकाश जी महाराज की प्रतिमा स्थापित कर इस चौराहे का नाम स्वामी शांति प्रकाश चौराहा रखा गया है तथा वनट्री हिल्स की कॉलोनी का नाम संतगुरु स्वामी शांति प्रकाश कॉलोनी रखा गया।

अमर शहीद नारायण देव आर्य

हां, 6 जनवरी का सिंध के इतिहास में अनोखा महत्व है। हर साल 6 जनवरी आती है और गुजर जाती है। उस दिन क्या हुआ था? हमको कुछ याद भी है? हम सिंधी अपने ऐतिहासिक ज्ञान से इतने अपरिचित रहते है कि वह दिन आने पर हमारे दिलों में कोई उथल पुथल भी नहीं होती। 6 जनवरी प्रतिवर्ष आकर चली जाती है और हमारे दिलों को दहला भी नहीं पाती!

6 जनवरी सिंधियों के दिल से विस्मृत क्यों हो रहा है? क्या हमें ज्ञात है कि इस दिन कुछ ऐसा घटित हुआ था ? क्या हमें ज्ञात है कि इस दिन कुछ ऐसा घटित हुआ था जो सिंधियत की रक्षा के लिये अविस्मरणीय घटना थी। उस दिन करांची में एक वीभतस्य हत्याकांड हुआ था जो बरसों तक हमारे आइंदा की नस्ल को अपने उस अपमान, कत्ल और कुरबानी की याद कराता रहेगा। 6 जनवरी 1948 को, पाकिस्तान बनने के पांच माह बाद जब सिंध के सिंधी हिंदू अपने प्रांत से बिछड़कर जा रहे थे, जब वे सिंध प्रदेश को अपनी इच्छा के विपरीत पाकिस्तान को सुपुर्द करके सीने में दर्द लिये सिंध से अलग हो रहे थे तब पाकिस्तान ने अपनी बुजदिली जाहिर की और इस्लाम के उपदेशों को नंगा कर दिया। करांची में सिंध से विस्थापितों के लिये अलग अलग स्थानों पर कुछ शिविरों की स्थापना की गई थी। आर्य समाज, देश सेवा और जाति सेवा के लिये सदैव अग्रणी रहा है। इस तरह की विपत्ती के समय आर्य समाज भला कैसे शांत रह सकती थी? इसलिये आर्य समाज की ओर से विस्थापितों के लिये, करांची में रहने के लिये कई शिविरों को चालू किया गया था। आर्य समाज उन शिविरों में सभी जातियों के हिंदुओं के लिये, बिना किसी भेदभाव के अपने दरवाजे खुले रखे थे। आर्य समाज में स्वागत करते हुये कहा - आइक्षे आर्य पुरुषों, आइये आर्य देवियों, आर्य बालकों आइये और ऋषि दयानंद के सिपाहियों की सहायता स्वीकार करो और विधर्मियों, पापियों से स्वयं को बचाओ करांची की धनपतमल पुत्री पाठशाला कितने ही सिंधियों ने देखी या सुनी होगी, किसी समय यह पाठशाला आर्यपुत्रियों के लिये विद्या का केन्द्र था। किसी को इस बात का गुमान नहीं था कि इस सरस्वती के मंदिर पर भी जुनूनी मुसलमानों का हमला होगा. 6 जनवरी को करांची के मुसलमानों पाकिस्तानी अधिकारियों के इशारे पर हमला करने की योजना बनाई। हिंदू घरों पर निशान अंकित किये गये मोहल्ले मुकरर तय किये गये और उन्हीं मोहल्लों में लूट मार के लिये मुजाहिद मुकरर किये गये, हथियार बांटे गये। पुलिस और मिलेट्री को भी साथ लिया गया और इसी अग्रिम योजना के अनुसार साजिश को अंजाम दिया गया। फिर क्या हुआ ? 6 जनवरी को प्रात: मजहबी पागल अपनी योजना अनुसार हिन्दूओं के घरों और दुकानों कीआरे दौड़ पड़े। "अल्हा हो अकबर और मारों काफिरों को " के नारों के साथ सारे कराची के रास्ते और मुहल्ले गूंज गये। और हिन्दूओं का हत्या कांड शुरू हो गया। उस कत्लेआम के समय ऐसे दिल दहला देने वाले और रोंगटें खड़े कर देने वाले अत्याचार किये गये कि जिसकी कल्पना करते हुआ इसांनियत का सिर भी शरम से झुक गया।

इस्लामी मुजाहदवि (?) और मोहम्मद के अनुयाइयों ने अपने हाथ साफ किये और बेगुनाहों और बेकसूरों पर हमले कर अपनी असलीयत का इजहार किया। सारा इस्लामी इतिहास खून से सरोबर है। खून पीना इन खबीसों का खानदानी पेशा है। इस्लाम जहां गया है वहां तलवार के जोर पर फैल गया है।सिंध के दूसरे शहरों से आये अनेक हिन्दू भाई और बहने कराची की कई शिवरों में ठहरे हुये थे। वे बाहर से आये हिन्दू इन इस्लामी खबीसों से बच नहीं पाये मुसलमान दंगाई नारायण स्वामी मंदिर और धनपतमल आर्य पुत्री पाठशाला आदि की ओर खिच आये। धनपतमल पुत्री पाठशाला में लगभग पांच सौ हिन्दू परिवार ठहरे हुये थे। लगभग दो हजार दंगाई पाठशाला पहुंचे और नारे लगाते हुये अपने खंजर और अन्य हथियार चमकाने प्रारंभ किये। बेबस और निहत्थे हिन्दू घबराने और डरने लगे। उनका सम्मान, जान और माल सब खतरे में था। सभी सोचने विचारने लगे कि अब क्या होगा ? सिंध के सक्खर जिले में सुल्तान कोट नामक एक गांव है और उस गांव का एक नौजवान श्री नारायण देव बचपन से ही आर्य समाज के प्रभाव में आया। आर्य समाज ने इसकी आर्य भावनाओं को जागृत किया। सक्खर में रहते हुये इस आर्य नवजवान ने अनेक साथियों को व्यायाम और योग आसन सिखाये। प्राकृतिक इलाज किये और कितने ही नवजवानों को आर्य समाजी बनाया।

श्री नारायण देव आर्य वीर दल का भी संचालन करता था उसने न सिर्फ स्वंय लाठी चलाना सीखा बल्कि कितने ही दूसरे नवजवानों को भी लाठी चलाना सिखा दिया था और यही लाठी चलाने की कला अपने करिश्में दिखाने के लिये नारायण देव ने सार्थक की। आर्य और नारायण देव अकेले ही लाठी लेकर दो हजार मुस्लिम गुंडों के सामने हुए। मुस्लिम गुंडे 'पुत्री पाठशाला' के मुख्य द्वार तक आ चुके थे और वे बंद दरवाजे को तोड़ने लगे। श्री नारायण देव ने अपनी पूरी शक्ति से पिशाचों को ललकारा। जिसने भी अपनी आंखों से वह दृश्य देखा वे ही अधिक वर्णन करके बता सकते है। मेरी लकड़ी की कलम में इतनी शक्ति नहीं है जो ुस अनदेखे नजारे का नक्शा आपके सम्मुख प्रस्तुत कर सके। कहते है कि 'युद्ध के सेनापति' शंकर का रूप धारण कर 'महाशिव' नारायण देव ने नीच दंगाइयों से खूब मुकाबला किया और कई दंगाइयों के सिर तोड़कर लहुलुहान कर दिये और ऋषि दयानंद का यह वीर सिपाही बराबर आधा घंटे तक मुसलमान गुंडों को दरवाजे पर ही रोके रखा और वीरता से अपने वार पूरी शक्ति के साथ करता रहा। आखिर कब तक वह संघर्ष चल सकता था। यह लड़ाई अधिक देर तक चल नहीं सकती थी। एक अकेला दो हजार गुंडों का सामना कब तक कर सकता था? अंत में नारायण देव घायल होकर नीचे गिर पड़े और उनके प्राण पखेरु उड़ गये। आर्य वीर नारायण देव के बलिदान होने पर प्रमुख द्वार खुला हो गया और दंगाई आर्य पुत्री पाठशाला में प्रवेश कर घुस गये। धनपतलाल पुत्री पाठशाला में पनाह लिये हुये परिवार पर गुंडे टूट पड़े। कितनों की हत्या की गई, कितने घायल हो गये और लूटे गये। पाठशाला के पत्थर भी इस हत्याकांड को देखकर रो पड़े। इस घटना को आज तीस साल (जब यह लेख लिखा गया था) गुजर गये हैं। इन तीस वर्षो में ही हम सिंधी 6 जनवरी को बलिदान हुए नारायण देव और उनके साथी गागूमल को बूल चुके हैं। क्या यह हमारे लिये वाजिब है? समाज रक्षा कै लिये शीश स्वाहा करने वाले वीरों और योद्धाओं की स्मृति में ही हमारा उत्थान हो सकता है। इतिहास को जिन्होंने विस्मृत कर दिया है खुद संसार को विस्मृत हो गये है। हिंदु नवजवानों! अपने पराक्रमी वीरों को विस्मृत न करों और उनकी आत्मा की आवाज को सुनने का प्रयास करो!!

स्व. क्रांति कृपलाणी

अनुवादक अमृत रतनाणी साभार धर्मवाणी

आग्नेय तीर्थ हिंगलाज

अह तीर्थ 25.30 अक्षांश तथा 65.61 देशांतर पूर्व के मध्य फैला हुआ है। सिंधु नदी के मुहाने से 80 मील पश्चिम तथा अरब सागर से 12 मील उत्तर में स्थित है। जहां गिरिमाला मकरान और लूस को पृथक करती है, वहीं गिरिमाला के छोर में हिंगलाज तीर्थ है। पहाड़ पर एक अंधेरी गुफा बिराजती है, वहां के देशवासी (मुसलमान) भी देवी को नानी और वहां की तीर्थ यात्री को नानी का हज कहते है। तंत्रचूड़ामणि और वृहन्नीलतंत्र में यह तीर्थ स्थान हिंगुल्ला तथा शिवचरित नामक तंत्र ग्रंथ में भी हिगुला नाम से वर्णित है। उक्त तंत्र ग्रंथों के मत से हिंगलाज 51 शक्तिपीठों में से एक पीठ है। सतीका शव कंधे पर लादे हुये शिव इतस्त: घूमते जब वहां पहुंचे तो भगवान विष्णु ने अपने चक्र से सती के शव का छेदन किया था, यहां पर सती का ब्रहामरंध गिरा था, इक्यावन शक्ति पीठों में से यह एक प्रमुख शक्तिपीठ है। त्रेता में श्रीराम ने जब रावंण का वध किया था, तो ब्रह्म हत्या के पाप से वह यहां पर ही मुक्त हुये थे। हिंगलाज में भैरव का नाम भीमलोचन भैरव है। कराची बंदरगाह से उत्तर पश्चिम 45 मील दूर हिंगलाज देवी का स्थान है। बलुचिस्तान का अथर रेगिस्तान एक आग का दरिया है, जहां पर हिंगलाज शक्तिपीठ है। जब पाकिस्तान का जन्म नहीं हुआ था और भारत की पश्चिमी सीमा अफगानिस्तान और ईरान थी, उस समय हिंगलाज तीर्थ हिंदुओं का प्रमुख तीर्थ तो था ही, बलुचिस्तान के मुसलमान भी हिंगलादेवी की पूजा करते थे उन्हें नानी कहकर। मुसलमान भी लाल कपड़ा, अगरबत्ती, इत्र फूलेल और सिरनी चढ़ाते थे। हिंगलाज शक्तिपीठ हिंदुओं और मुसलमानों का संयुक्त महातीर्थ था। कराची से ऊंट की यात्रा चंद्रकूप होकर 25 दिन में हिंगलाज पहुंचती है और लौटते समय चंद्रकूप न जाने से 5 दिन की बचत हो जाती है। सो बीस दिन में कराची लौटकर आ पहुंचते है इस तरह ऊंट की गति के पैमाने से कराची से हिंगलाज तक जाने आने में 45 दिन लगते हैं, कोई कोई एक महीना में भी आते जाते रहे हैं। हिंगलाज यात्रा और देवी दर्शन कराने वाला तीर्थ पुरोहित या पंडा छड़ीदार होता है। यह एकाधिकार नागनाथ के अखाड़ा के आसपास बसे हुये कुछ परिवारों को वंश परंपरा से प्राप्त है। करांची से 6 –7 मील चलकर हाव नदी पड़ती है। यहीं से हिंगलाज की यात्रा शुरू होती है। यहीं पर शपथ ग्रहण की क्रिया यात्रियों द्वारा संपन्न होती है, यहीं पर लौटने तक की अवधि तक के लिये संयास ग्रहण किया जाता है और यहीं पर छड़ी का पूजन होता है, और यहीं पर रात में विश्राम करके प्रात:काल हिंगलाज माता की जय बोलकर मरुतीर्थ की यात्रा प्रारंभ की जाती है। प्रत्येक यात्री के पास दो महीने की खाद्य सामग्री यात्रा में अवश्य साथ होनी चाहिये। और साथ में होती है इमली की सूखी चटनी। अधिक प्यास लगने पर, मिचली चक्कर आने पर यात्री उसकी एक गीली अपने मुंह में डाल लेते हैं। हाव नदी के इस पार सिंध प्रदेश की सीमा समाप्त होती है और नदी पार करने पर बलुचिस्तान के लास बेला राज्य की सीमा प्रारंभ होती है। लासबेला स्वाधीन राज्य था, उसी राज्य में देवी हिंगलाज की अवस्थिति है। बलूची हष्ट पुष्ट लंबे तगड़े शानदार जिस्म के धनी और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के पानीदार व्यक्ति होते हैं।
यमद्वार की यात्रा : यात्रियों को यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व निम्नलिखित कठोर प्रतिज्ञा करनी पड़ती है –
''जब तक माता हिगलाज के दर्शन कर पुन: हम यहां नहीं लौटेंगे तब तक हम लोग सन्यास धर्म के नियमों का पालन करेगें। एक दूसरे की यथाशक्ति सहायकता करेगें, ईर्ष्या द्वेष, निन्दा के भाव ह्दय में नहीं रखेगें किंतु किसी भी हालत में अपनी ससुराही का पानी किसी दूसरे को नहीं देगें, यहां तक कि पति–पत्नी को, पत्नी –पति को, पुत्र –पिता को, पिता–पुत्र को मां बेटे को, बेटा मां को भी अपनी सुराही का पानी नहीं देगा, जो इस नियम का उल्लंधन करेगा उसकी मृत्यु निश्चित होगी।
इस यात्रा में ऊंट का बड़ा ही महत्व है रेगिस्तान में ऊंट ही पथ –निदेशक होते है ऊंटेवाले नहीं। कहां जाना है कौन–सा रास्ता है है यह तो ऊंट वाले नहीं ऊंट ही जानते है। हां रात में यदि आसमान साफ रहा तो ऊंटवाले सप्तर्षि और ध्रुव तारा की पहचान से पथ दिशा पहचानते है किन्तु दिन में नही। और उंट दिन हो या रात हो जहां उसे जाना है, जिधर पानी मिलने की सम्भावना रहती है उधर का ही रास्ता वह पकड़ता है। यह तीर्थ यात्रा अति विकट है। प्राय: सभी यात्रियों को पहले से ही यह एहसास करा दिया जाता है कि हिंगलाज की यात्रा यम द्वार की यात्रा से भी अधिक संकटपूर्ण हैं।
हिंगलाज यात्रा का यह भी नियम है कि हर यात्री एक एक रोटी ऊंटवाले को दे और जहां कुआं हो, वहां कुये के रखवाले को भी एक – एक रोटी देने का नियम है। एस रेगिस्तान में मीठे पानी का कुआं होना एक नियामत है। दस बीस कोस के ईद–गिर्द कहीं कुआं हो तो यात्रियों का सौभाग्य समझे। लास बेला स्टेट का आदेश था कि जो आदमी जहां पर कुआं खोदे, उसकी वह रखवाली करता हर साथ ही दस –बीस कोस के ईदर्गिद जो घटना घटे, उसी सूचना वह निकटवर्ती पुलिस चौकी को दे और उसका वेतन। के नाम पर एक रोटी जो भी यात्रा उधर से गुजरे और वहां खाना बनायें तो एक रोटी कुयें के रखवाले को भी दे। यदि यात्री वहां पर नहीं गये तो खुदा हाफिज।
खुशकिस्मती : मरूस्थल के ये जल केन्द्र लास बेला राज्य के सूचना –प्रसार केन्द्र होते है। कुयें के ईद–गिर्द दस –बीस कोस की दूरी पर घटी घटनायें पानी लेने के लिये आने वाले लोग कुयें के पहरेदार को बताते है। हवह निकटवर्ती पुलिस चौकी में जाकर सूचित करता है। यदि कुयें के पहरेदार एवं ऊंटवालों के स्वभाव, चरित्र का विश्लेषण किया जाये तो वे सर्व सह रक्षक, संरक्षक, मार्गदर्शन और हमारे जीवन मरण के उत्तरदायी होते है। ईमानदारी, दयानतदार इतने कि यात्रियों की रक्षाकपट कतरनी से कतरे जाने पर भी मौन रहते है। अपनी जान को खतरे में डालकर यात्रियों की रक्षा करते है यही सलामत नानी की हज तक ले जाना और वापस कराची पहुंचा देना व अपना धर्म समझते है। लास बेला राज्य की राजधानी शोणवेणी है बेतरतीब उत्तर से दक्षिण की ओर सरक गयी है। किसी धर्मात्मा मारवाड़ी सेठ ने एक धर्मशाला और उसके निकट कुआं बनवा दिया था। यहीं इस दुरतिक्रम यात्रा पथ में एक पक्का कुआं और धर्मशाला हैं।
सच पूछा जाये तो यात्रियों को जीवन और मरण के रहस्य का बोध भगवती हिंगलाज की तीर्थ यात्रा बहुत ही स्वाभाविक ढंग से करा देती है। इस क्षेत्र में वर्षो नाम मात्र को होती है यदि यहां आठ –दस बरस में पानी बरस जाये तो खुशकिस्मती समझें।
चन्द्रकूपतीर्थ: बहुत ही वीभत्स और भयानक द्दश्य है यहां का चारों और मिट्टी की पहाड़ियों के बीच में एक पर्वत के शिखर से निकलता हुआ धुआं।यही है अनवरत धुआं उगलता हुआ चन्द्रकूप सरोवर जो धूम्रवाहन या धुम्रमुख प्रेत की तरह भयानक, अति भयानक नजर आता है। यही है वह चन्द्रकूप, जहां सबके पापों का क्षय होता है और यदि लोगों में से किसी ने पाप छिपाने की कुचेष्टा की तो चंद्रकूप अपने करालगान में भरकर उनका क्षय कर देता है। किसी कापलिक की धूनी है चन्द्रकूप या भौंम नरक है। यह देव तीर्थ है या कराल मुख मृत्यु का द्वार है।

क्रमशः ...2...

पहाड़ियों से घिरा हुआ ऊंचा पहाड़ ही ''चन्द्रकूप'' है। भोर में ही यात्रीगण उस पहाड़ कर चढ़ते है चढ़ाई कठिन नहीं है लेकिन पैर फिसला करते है। वहां जाकर सब लोग चन्द्रकूप भगवान की महिमा उनके प्रत्यक्ष चमत्कार अपनी आंखों से देखते हैं। वह जो धुआं उठ रहा है वह चंद्रकूप से ही उठता है। चंद्रकूप एक सरोवर हैं, लेकिन पानी नहीं है सिर्फ बादल ही बादल है सरोवर के अंदर धधकती हुई आग मिट्टी को ऊपर उछालती है।

फड़े –बड़े बुल बुले निरन्तर उठते रहते है इतने बड़े बुल बुले कि अनाज भरने वाले बड़े –बड़े टोकरे भी छोटे पड़ जाते हैं। चंद्रकूप का कीचड़ आग से इतना उबलता और खौलता है कि ऊपर उठकर फैल जाता है। ये जो छोटी–छोटी पहाड़ियां दिखती हैं, सबकी सब उसी दल दल की कीचड़ से बनी है। लाखों करोड़ों वर्षो से चंद्रकूप भगवान की यह लीला चली आ रही है। वहां जाकर यात्रीगण अपने किये हुये पापों को चिल्ला चिल्लाकर कबूल करते हैं। अगर किसी ने पाप किया है, और वहां जाकर वह पाप को छिपाता है तो तत्काल उठते हुये विशाल हाथ उठना बंद हो जाता है। जो अपने पाप को व्यक्त करते है।चंद्रकूप से चलकर पांच दिनों तक चलते ठहरते छठे दिन यात्रीगण सूर्यास्त के समय एक छोटे से गांव में पहुंचते है। यहां के मकान कंटीले झाड़ झंखाड़ों उनका नारियल गांजा का भोग चंद्रकूप बाबा तुरंत स्वीकार करते हैं। एकाएक चंद्रकूप बड़े वेग से उबलने लग जाता है, आंधी की गति तीव्रतर हो जाती है, खड़ा रहना दुश्वार हो जाता है। तत्पश्चात सब लोग जमीन थामकर, झुककर जय जयकार करते हुए चंद्रकूप शिखर की ढाल पर पहुंचकर फिसलते, लेटते, उतरने लगते हैं। बलोचिस्तान के इन पहाड़ों के अंतराल में भेड़िया जाति का एक जानवर होता है, जो लेटे हुए या निद्रित व्यक्ति के पैरों के पास आकर लेट जाता है, और जीभ से उस व्यक्ति के पैर के तलवों को चाटता है। आदमी धीरे धीरे निद्रा में होकर बेहोश जाता है, फिर वह शिकारी तलवे चाटता है, जब तक आदमी मरकर सुखकर कंकाल नहीं बन जाता, तब तक वह उसके तलवे चाटता मरने या सूख जाने पर वह उसे उठाकर बाहर मैदान में फेंक आता है। से नहीं बल्कि लकड़ी के बने हुये होते है। गाय, मुर्गी, ऊंट, गधे आदि जानवर भी दिखने लगते है। माई की गुफा तक पहुंचने का यह आखिरी पड़ाव है। अगले दिन सूर्यास्त से पूर्व चलकर चार पांच घंटे में अघोर नदी के किनारे पहुंचना पड़ता है। रात भर वहां रहकर बड़े भोर भाई की ज्योति के दर्शन होते है। उस दिन निराहार रहना पड़ता है। बाद में माई के दर्शन के बाद अन्न ग्रहण करने का विधान है। झरने के किनारे : रेत के समुद्र में चलते चलते यात्री अघोर नदी के बालुकामय तट पर पहुंचते हैं। जय मां हिंगलाज। अघोर नदी का एक किनारा सपाट बालुकामय है, दूसरा किनारा पाषाणमय ऊंचा बहुत ऊंचा कगार का है। छड़ीदार रेत में छड़ी को गाड़कर गांजा का भोग लगाकर बताता है कि नदी के उस पार जो पहाड़ है, उस पहाड़ की गुफा में माता हिंगलाज की गुफा है। छड़ीदार एक विधान बताता है कि किनारे पर बिना पत्तों के जो झाड़ खड़े है, उनका दातून करके हर आदमी अघोर नदी में स्नान करे। हिंगलाज महापीठ के पीठाधिपति अघोरी बाबा को दान दक्षिणा देकर नदी के उस पार माई के महत्व को पार कर झरने के किनारे रात में फिर विश्राम करना पड़ता है। अब तो नियम बन गया है यहां कि दान दक्षिणा बाबाजी को दी जाये और बाबाजी यात्रियों को भगवाती हिंगलाज के दर्शन करावें। करांची में नागनाथ के अखाड़े के लोग इन्हें अघोरी बाबा कहते है और इधर के लोग कोठारी के पीर कहते है। इनमें योग बल की अद्‌भुत शक्तियां है, मुरदा आदमी को जिंदा कर लेते हैं। लासबेला राज्य से इन्हें हर महीना वृत्ति दी जाती है और यह हिंगलाज पीठ के श्रीमहंत है। छड़ीदार यात्रियों को कहना है– भींगे कपड़ों से चलो। कपड़े निचोड़कर माता हिंगलाज के महल के अंदर पहुंचो। छड़ीदार ने बताया कि यह महल आदमी द्वारा निर्मित नहीं है, इसे यक्षों ने बनाया है। सचमुच वह अमानवीय शिल्प था, वह एक निराली रहस्य नगरी थी। पहाड़ पिघलाकर वह महल बनाया गया ता। संकीर्ण मार्ग से दाहिने बायें मुड़ते हुये चल रहे थे। हवा नहीं, रोशनी नहीं, रंग बिरंगे पत्थर लटके हुये थे। पिघले हुये पत्थरों की चाहरदीवारी थी, छत थी और नीचे भी रंगीन पत्थरों का फर्श था। छत 50–60 फुट ऊंची होगी। अद्‌भुत जादू की नगरी में हम प्रवेश कर रहे थे। उसे गुफा कहें या महल कहें या विश्वकर्मा की रचना कहें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। ऐसा लगता था कि हजारों – लाखों वर्ष पूर्व यह पर्वत ज्वालामुखी रहा होगा, भयंकर विस्फोट होने से ज्वालामुखी फटने से यह निर्माण हुआ होगा, लेकिन कल्पना भी वहां पानी भरती थी। तीर्थयात्रा का नियम है कि अन्न न ग्रहण किया जाये। फलाहार करने, जलाहार करने का निषेध नहीं है। जिसके पास जो फल, मेवा, मिश्री, खजूर होते हैं खाकर जलपान कर लेते है।

देवी के दर्शन : अंत में गुफा में देवी के दर्शन होते है। यात्री घुटनों के बल घिसटता हुआ अन्दर जाता है जय मां आद्य शक्ति। ज्योतिर्मय जगजननी तुम्हारी जय हो। अद्‌भुत दृश्य अनिर्वचनीय यह अनुभव। जन्म जन्मान्तर के ''पाप शाप–ताप का तत्काल क्षय हो जाता है। हृदयान्धकार दूर हो जाता है। प्रकाश, दिव्य प्रकाश हृदयदेश में भर जाता है। बेदी के दूसरे द्वार पर छड़ीदार दीपक लिये खड़ा रहता है, रेंगकर द्वार पर पहुंच जाता है, वह हाथ पकड़कर खींच लेता है गुफा की दीवार पर टिके हुये अघोरी बाबा माला लिये खड़े रहते हैं, बस उनके चरणों में प्रणिपात करते हुये झुक जाते हे। वे उठाकर कहते है सौम्य ! जो कुछ देखा है, अनुभव किया है कभी उसे भूलकर भी किसी से प्रकट न करना। शिखर पर एक विशाल शिला, पर्वत के शिरोभाग में लटकती–सी दिखाई पड़ती है। अघोरी बाबा कहते है देखो उस शिला में अंकित सूर्य और चन्द्र है। भगवान श्रीराम जब ब्रह्म हत्या से मुक्ति पाने के लिये यहां आये थे, तभी उन्होने अपनी उपस्थिति, तपसाधना प्रमाणित करने के लिये अपने हाथों से ये सूर्य अंकित किये थे।

देवी हिंगलाज के दर्शन अद्‌भुत एवं चैतन्यतम हैं। लेकिन तीर्थ यात्रा बड़ी ही विकट मानी जाती है।

सिन्धु संस्कृति एवं सामाजिक क्रांति अभियान -

घर घर ज्योति जलाना है ,सोया समाज जगाना है।

जीवनदीप जलाते चलो , ज्ञान की गंगा बहाते चलो ,

राह मिले जो दीन - दु:खी,सबके कष्ट मिटाते चलो।

गरीब परिजनों हेतु तन,मन,धन के साथ अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें। धन्यवाद।

साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रचारक संत(भगत)कंवरराम

सिंध की पावन भूमि जहां वैदिक संस्कृति पल्लवित हुई है। वहां अनेक ऋषि, मुनियों ने जन्म लिया। सिंधु नदी जिसका उल्लेख ऋग्वेद एवं श्रीमद भागवत में किया गया, प्रमाणित करता है कि सिन्ध प्रदेश प्राचीन व धन-धान्य से संपन्न था।

"स्वश्वा सिन्धु सुरथा हिरण्यों सुकृता वाजिनीवति,
ऊणीवती युवति: सीलभावत्युताधि वस्ते सुभगा मभुवधन।"
(ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त 75 मंत्र 8)

ऐसे महान सिन्धु देश में अनेक संत, महात्मा, फकीर, देवरूप उत्पन्न हुये जिन्होने न केवल सिन्धु भूमि को अपने प्रकाश से आलोकित किया, अपितु विश्व को भी अपनी ज्योतिर्मय सुधा से विभोर यिका इन संतों, सूफियों व फकीरों में से कुछ ऐसे भी थे जिन्होने आत्मज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक, सामाजिक कुरीतियों का निवारण भी किया।

कुछ संतो व सूफियों ने प्राप्त ईश्वरीय देन काव्यों से समाज भक्ति रस संचालित की। ऐसे महान देवतुल्य भगत कंवरराम जी ने सिंधु प्रांत में जन्म लिया।सुन्दरतम सिंध प्रांत के सख्खर जिले में मीरपुर माथेलो तालुका के ग्राम जरवारन के लिये वह दिन ऐतहासिक था जब विक्रम संवत 1942 के बैसाख माह में एक भाग्यशाली वालक का जन्म हुआ। इस बालक की माता का नाम तीर्थ बाई और पिता का नाम ताराचन्द था। गांव में उनकी छोटी सी दुकान एवं पुश्तैनी भूमि थी उनके विवाह को काफी समय हो चुका था परंतु संतान सुख प्राप्त नहीं हुआ था। बड़ों की सलाह पर दोनों जरवारन से लगभग 6 कोस दूर रहिड़की गांव में संत खोताराम साहब के दरबार में गये एवं उनके आशीर्वाद से ही दैविक शक्ति प्राप्त बालक (कंवरराम) का जन्म हुआ। सिंधी भाषा में कंवर कमल के फूल को कहते है।

करवराम बाल अवस्था से ही अजीब खेल खेलता था वह एक दुकानदार और किसान का पुत्र था पर उसके खेल खिलौने न दुकानदार के बच्चों की भांति थे न किसान के बच्चों जैसे। उसे विद्यालय पढ़ने भेजा गया लिखने -पढ़ने की वह गणित की प्रवीणता से उसने अपने शिक्षक श्री दाऊमल को अचंभित कर दिया।

एक बार जब कंवरराम अपने खेत की रखवाली कर रहे थे उस समय टिड्डी दलों ने फसलों पर हमला कर दिया और देखते -ही देखते सभी खेतों की फसलों का काफी नुकसान कर दिया सिर्फ एक खेत जिसमें कंवरराम ईश्वर ध्यान में मग्न थे टिड्डी दलों के नुकसान से बचा रहा। उनके पिता भाई ताराचंद ने जब खेत पर बालक कंवर को ध्यान मग्न देखा तो झट समझ गया कि नन्हा योग में मग्न था और ईश्वर ने स्वंय आकर ड्यूटी दी है जिस खेत का ईश्वर स्वयं रक्षक हो उसे टिड्डी भला कैसे नुकसान पहुंचा सकते थे ? "जिस पत राखे साचा साहब, नानक मटे न सके कोई" जिसकी इज्जत परमात्मा ने की हो उसे हानि कौन पहुंचा सकता है।

इस रहस्यमयी घटना के पश्चात पिता भाई ताराचंद एवं परिवार के लोगों ने जब बालक के चारों और दैविक प्रकाश महसूस किया तो उन्होने 10 वर्ष की आयु में ही रहिड़की दरबार साहब में संत संतरामदास साहब (संत खोताराम साहब के सुपुत्र) के पास भेज दिया जिनके आशीर्वाद सेउनका जन्म हुआ था। वहीं दरबार में रहकर कंवरराम ने हिंदु धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया अपनी प्रखर बुद्धि के कारण शीघ्र ही उन्होने श्लोकों चौपाइयों एवं भजनों को कंठस्थ कर लिया। दरबार के संगीतज्ञ भाई हाशाराम द्वारा उन्हें विभिन्न प्रकार के रागों की शिक्षा दी गई और उन्हें इनका नियमित अभ्यास कराया। गुरु के निर्देश में कंवरराम जो अब भाई कंवरराम के नाम से पहचाने जाने लगे थे। दरबार के सत्संग मेंभाग लेनाशुरू कर दिया इस सत्संग में श्रद्धालु उनकी मधुर आवाज से बंधे रहते थे। मोहक समावेश रहता था। गुरु संतरामदास के साथ सिंध प्रांत में जहां भी महत्वपूर्ण धार्मिक त्यौहारों व मेलों का आयोजन होता था इनमें भाई कंवरराम द्वारा संगीत के साथ नृत्य का भी भाई कंवरराम हमेशा सिर पर भगवा साफा बांधते थे कानों में सोने की बालियां व सफेद लंबा खुला चोगा पहनत थे।

जिसे कमर में चौड़े पट्टे से वे बांधे रहते थे। भक्तों में तल्लीन होकर वे जब नाचते व गाते थे तो अजीब समा बंध जाता था उनके पास जो भी कोई मनोकाना से जाता था वह पूरी होती थी इतनी प्रसिद्धी के बाद भी हमेशा विनम्र रहते थे। धार्मिक प्रवचनों में वे हमेशा परोपकार व दरिद्र नारायण की सेवा को अत्यधिक महताव देते थे। प्रत्येक कार्यक्रम के बाद वे अपनी झोली फैलाकर लोगों से दान मांगते थे। उनकी झोली हमेशा सिक्कों व नोटों से भर जाती थी इसमें से कभी भी कोई पैसा उन्होंने अपने उपयोग के लिये नहीं रखा था बल्कि उस धन को विधवा,अनाथ, बीमार व अन्य जरूरतमंदों में बांट देते थे। इन्हीं पैसों से गौशाला, धर्मशाला, मुसाफिर खानों का निर्माण व रखरखाव भी होता था उन्होंने कभी भी जात पात व धर्म का विचार नहीं किया था। भाई

कंवरराम के साथ अनेकों बार आश्चर्यजनक घटनाएं घटीं। एक बार शिकारपुर गांव में भजन गा रहे थे उस समय एक होशियार महिला अपने मृत बच्चे को शाल में लपेटकर उनके पास लाई और उसे आर्शीवाद देने को कहा जब महिला को उसका बच्चा वापिस दिया गयातो उसने भाई कंवरराम पर मृत बच्चा लौटाने का आरोप लगा दिया। उन्हें महिला की चालाकी का पूर्व से पता चल गया था, परंतु उन्होंने उस बात को जग जाहिर नहींकिया। उन्होंने बच्चे को वापिस अपनी गोद में लेकर एक लोरी सुनाई और वह मृत बालक पुनः जीवित हो उठा। एक अन्य आश्चर्यजनक घटना जैकोबाद कस्बे में हुई जहां उनके द्वारा गाये गये राग सारंग से थोड़े ही समय में खुले आसमान में बादल घिर आये और तेजी से वर्षा शुरू हो गयी। एक अन्य अवसर पर जब तेज बारिश से प्रलयकारी स्थिति निर्मित हो गयी तो उन्होंने राग सोंरठ गाकर वर्षा को रोक दिया था।

कंवरराम के इन चमत्कारों की खबरें दूरदराज तक फैल गयी और तब वे संत कंवरराम के नाम से अतयधिक प्रसिद्ध होने लगे। उस समय अंग्रेजी शासन था जो हमेशा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विद्वेष की भावना बनाये रखना चाहता था, फूल डालो और राज करो यही उनकी नीति थी।उत्तरी सिंध के सक्खर जिले के एक धार्मिक स्थान के आधिपत्य को लेकर दो वर्गों में विवाद व तनाव की स्थिति निर्मित थी। यह आरोप लगाया गया कि सक्खर कस्बे के लोगों ने वहां के एक कबीला प्रमुख के लड़के पर हमला किया हैं उसने इसका बदला लेने के लिये 2 व्यक्तियों को भाड़े पर लिया. 1 नवम्बर सन् 1936 शाम 5 बजे जब संत कंवरराम रहिड़की से सक्खर जा रहे थे तब जंक्शन रेलवे स्टेशन पर उन्हें 2 हट्टे कट्ठे व्यक्ति मिले जिनके पास बंदूके थीं उन्होंने संत के पांव छुये। संत ने प्रसाद के रूप में उन्हें पेड़े दिये और आशीर्वाद दिया। जैसे ही रेलगाड़ी प्लेटफार्म से चली उन्होंने संत कंवरराम जो खिड़की के पास बैठे थे पर गोली चलाई जो उनके कंधे पर लगी। उनके साथी शीतलदास के बाई कंधे पर गोली लगी। संत अपनी कुर्सी से गिर पड़े और अत्यधिक खून बहने से बेहोश हो गये। रेलगाड़ी रोकी गई और चिकित्सा सेवा बुलाई गयी जब तक ट्रेन सक्खर पहुंचती संत कंवरराम अंतिम सांस ले चुके थे।

संत कंवरराम अब हमारे बीच नहीं रहे पर उनके दिये गये उपदेश आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। उनके गाये गये गीत हमेशा ज्ञान से ओतप्रोत रहते थे और मनुष्य को हमेशा उत्साहित करते थे। उनका सबसे लोकप्रिय गीत नाले अलख जे बेड़ो तारि मुंहिजो जिसका मतलब है भगवान के नाम से मेरी नइया तर जायेगी यह आज भी सिंधी घरों में और धार्मिक सभाओं में अत्यधिक श्रृद्धा के साथ गाया जाता है।

दयाल बड़ामल बिजलानी, इटारसी

सिंधी समाज के सांस्कृतिक दूत : प्रोफेसर राम पंजवानी

प्रो. राम पंजवानी ने सिंधी समाज को जो योगदान दिया है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता, समाज को एकता के सूत्र में पिरोने वाला उन्होंने ऐसा मंत्र दिया है, झूलेलाल समारोह जिसे प्रति वर्ष आयोजित कर सिंधी समाज के लोग उन्हें याद कर सकते हैं, इस समारोह की शुरूआत प्रोफेसर राम पंजवानी ने ही की। वरुण देवता सिंधियों के अराध्य देव हैं, साल में एक बार इसी दिन सभी सिंधी हर शहर में एक जगह एकत्रित होकर इस समारोह को आयोजित कर अपनी सामाजिक एवं संस्कृति एकता का प्रदर्शन करती हैं, इसी समारोह ने सिंधी समुदाय में भक्ति और शक्ति का संचार किया। समाज को एक जुट रखने के लिये यह क्या कम बड़ा योगदान है? कैसे भुला जा सकता है, सिंधी समजा प्रोफेसर राम पंजवानी को। समाज एवं देश के हित में वे सदैव सक्रिय रहे हैं। शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में प्रोफेसर राम पंजवानी ने जीवन पर्यंत कड़ी मेहनत के साथ काम किया। वे सही मायने में सिंधी समाज के सांस्कृतिक दूत थे। वे उच्च कोटि के साहित्यकार, संगीतकार, शिक्षा शास्त्री, समाज सुधारक तथा देश भक्त थे। उन्हें साहित्य सेवा के लिये उनके कहानी संग्रह अनोखा आजमूदा पर 1964 में साहित्य अकादमी एवार्ड से सम्मानित किया गया। विभाजन के बाद भारत आकर वे मुंबई के जय हिंद कालेज सिंध पाकिस्तान से आये विस्थापित सिंधी भाइयों द्वारा ही स्थापित किया गया है। इस कालेज में प्रो. पंजवानी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और काफी साहित्यिक ऊंचाइयों तक पहुंचे। बंबई विवि में वे 1970 से 77 तक सिंधी के विभागाध्यक्ष रहे। उन्हें 1981 में भारत सरकार ने पद्म श्री की उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने सिंधी भाइयों के नियंत्रण पर अनेक देशों की यात्रा की। प्रो. राम पंजवानी ने महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु, अब्दुल कलाम आजाद, इंदिरा गांधी, मोरारजी देसाई जैसी महान हस्तियों के समक्ष अपना गायन प्रस्तुत किया। सीता सिंधु भवन का निर्माण भी समाज के लिये उनका उल्लेखनीय योगदान है। प्रो. राम पंजवानी भगवान कृष्ण के भक्त थे। सूफी संतों की संगत में रहकर उन्होंने उनकी वाणी को कंठस्थ कर लिया था और जब वे संतों की वाणी मटका बजाते हुये गाते तो श्रोतागण मंत्र मुग्ध हो जाते। वे सही मायने में सिंधी समाज के सांस्कृतिक दूत थे।

सिंध के संतों की सामाजिक एकता

भारत एक आध्यात्मिक देश है, जिसके प्रत्येक कण-कण में ऋषियों, मुनियों एवं महापुरूषों के गुणों की एकात्मक, गोपनीयता समाई हुई है। यह एक सत्य सिद्धान्त है कि किसी भी जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय की नींव उनके संस्कारों धार्मिक रीति -रिवाजों और आचार व्यवहार की संहिता पर ही निर्भर हुआ करती है। ऐसे दैनिक गुणों की देन का श्रेय उस जाति के महापुरूषों का ही हुआ करता है जिनके संपर्क में मानव अपने समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बन जाता है अन्यथा आज का मानव तो ऐसे मार्गदर्शन से रिक्त हुआ मानवता के पथ से कोसों दूर होता जा रहा है। आज वह सिर्फ भौतिक सूखों की लोलुपता क्षणभंगुर ऐश्वर्य की तीव्र पिपासा, पार्थिव -प्रभुता एवं राजनैतिक सत्ता हथियाने के लिये संघर्ष संग्राम और ताण्डव नृत्य कर रहा है।

अखंड भारत का सिंध प्रदेश तो ऐसे साधु संतों और महापुरूषों का एक गढ़ ही था जिसमें सिंधी साहित्य संस्कृति और आचार संहिता जैसे अमूल्य रत्न आज भी सुरक्षित है। सिंध के संतों ने सामाजिक एकता को अपनाकर एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसे सदियों बाद भी नहीं भुलाया जा सकता है ''शाह अब्दुल लतीन '' शाह इनयात, सचल सरमस्त, रोहल नाज इत्यादि साहित्यकारों और कवियों का सिंधी साहित्य में समावेश इसका प्रज्वलंत प्रमाण हैं। सिंध के संतो ने कभी भी द्वेष, ईर्ष्या और अलगाववाद को प्रोत्साहन नहीं दिया। वे सदैव सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिये ही अपने समाज को प्रेरणा देते रहे है यही कारण है कि आज भी वे परोपकारी, सर्वधर्म, हितैषी, मृदुभाषी एवं स्वाबलम्बी बनकर विश्व के कोने कोने में सुरक्षित है। किसी भी साहित्य, संस्कृति एवं सुदृढ़ समाज पर सबसे अधिक उस जाति के महापुरूषों की ही छाप हुआ करती है। यही कारण है कि भारत की एकता, अखंडता और आदर्श को बनाये रखने के लिये उन्होने अपने घर-वतन, व्यवसाय और ऐश्वर्य को न्यौछावर कर भारत माता के चरणों में अपना जीवन समर्पित किया।सिंध के संतों ने न सिर्फ सिंधी समाज को ही दैनिक गुणों से परिपूर्ण किया है अपितु भारत के संपूर्ण प्रदेशों में भी अपनी कीर्ति कायम की है। कठिन परिश्रम और अपने कर्म के प्रति सदैव सजग रहना ही सिंध के संतों का प्रमुख उपदेश है। इस उपदेश के कारण आज भी आपको इस जाति का शायद ही कोई भिखारी देखने को मिलेगा। उदारता और नम्रता ही साधु के दो पंख हैं, जिनके द्वारा वह संपूर्ण मानव जाति तक पहुंचने में सक्षम हो जाता है। ऐसे महापुरूषों को कोटि-कोटि प्रमाण हैं।

श्री 108 श्री महंत स्वामी नारायण दास प्रेमदास
उदासीनअमरधाम, उल्हासनगर -2

साधु वास्वानी - एक अप्रतिम व्यक्तित्व

साधु वासवानी

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ज्ञान भक्ति प्रेम और करुणा के चंद का उदय हुआ, जिसने न केवल सिंध भूमि को अपने प्रकाश से आलोकित किया अपितु विश्व को अपनी ज्योति और सुधा से विभोर किया। ये चांद थे थावरदास लीलाराम वास्वानी जो दादा साधु वासवाणी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनकी सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं राष्ट्रीय सेवाओं के कारण भारत सरकार ने इनकी स्मृति में 25 नवम्बर 1969 को एक डाक टिकट निकाला। सत्य के बीज बोए : दादाजी का जन्म 25 नवम्बर 1879 ई. में कातिक एकादशी के पवित्र दिन हैदराबाद सिंध में हुआ। उनके पिता लीलाराम वास्वाणी देवी माता के अनन्य भक्त थे और माता वराबाई ईश्वर आराधिका थी। उन्हें जप साहब और सुखमनी साहब उसे कंठस्थ थे। वह प्रातकाल उठकर गुरुवाणी का जाप करती थी और घर का कामकाज भी करती। ऐसे वातावरण में दादाजी का पालन पोषण हुआ। मैट्रिक उत्तीर्ण होने के बाद दादा जी करांची कालेज में दाखिल हुए। अपने विनम्र स्वभाव, प्रवीणता एवं अन्य चारित्रिक गुणों के कारण दादाजी कालेज में सबके प्रिय बन गये। अंग्रेजी में बड़े होशियार थे। एक दिन कालेज के प्राचार्य हैजिकीथ ने कालेज के विद्यार्थियों को किसी विषय पर निबंध लखिने के लिये कहा। दादाजी ने भी निबंध लिखा. दादाजी का लिखा निबंध पढ़कर प्राचार्य मंत्रमुग्ध हो गये और दादा से कहने लगे कि तुम्हारी अंग्रेजी तो अनीबेसंत जैसी लगती है। दादाजी ने उच्च स्तरीय विद्याध्ययन के साथ साथ गुरुवाणी और श्रीमदभागवतगीता का अभ्यास एवं अनुशीलन किया। वे जवानों को सत् मार्ग पर आकर्षित करना चाहते थे। अपने सहपाठियों को प्रार्थना करने के लिये प्रेरित करते थे। दादा ने विद्यार्थी जीवन में विद्याध्ययन के साथ अपने सहपाठियों में प्रार्थना, सेवा, सादगी, सत्य, स्नेह के बीज बोए। इनके संसर्ग में विद्यार्थियों ने मांस भक्षण का त्याग किया। मुझे आशीर्वाद दोः अपनी प्रतिभा और प्रवीणता के कारण दादाजी करांची कालेज में लेक्चरर नियुक्त किये गये। साथ साथ वे अध्ययन भी करते रहे। दो वर्ष के बाद उन्होंने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। करांची में दादा ब्रह्म समाज के संपर्क में भी आए। ब्रह्म समाज वाले उन्हें व्याख्यान देने के लिये निमंत्रण देते थे। उनके व्याख्यान में एक अजीब तासीर था, जादू का असर था। लोग व्याख्यान सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाते थे। ब्रह्म समाज के साथ अच्छे संबंध होने के कारण उन्हें तार आई कि वे कलकत्ता में विद्या सागर कालेज में इतिहास एवं तत्वज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त किये गये है। सन् 1903 में कलकत्ता गये। उन्होंने अपने व्याख्यान से न केवल विद्यासागर कालेज के विद्यासागर कालेज के विद्यार्थियों को विमुग्ध कर दिया परंतु अपनी ब्रह्म समाज के साथ अच्छे संबंध होने के कारण
उन्हें तार आई कि वे कलकत्ता में विद्यासागर कालेज में इतिहास एवं तत्वज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त किये गये है। सन् 1903 में कलकत्ता गये। उन्होंने अपने व्याख्यान से न केवल विद्यासागर कालेज के विद्यार्थियों को विमुग्ध कर दिया परंतु अपनी विद्वता एवं आदर्शों के कारण कलकत्ता के कोने कोने में प्रसिद्ध हुए। दादाजी के मन में सब ही धर्मो, अवतारों महापुरुषों के प्रति श्रध्दा थी, सब को समान रूप से प्यार करते थे। वे समन्यवादी थे। दादाजी छुट्टियों में सिंध में अपने घर में आए। अब मां की इच्छा थी कि उनका बेटा थांवर विवाह योग्य है, उसे अच्छी नौकरी भी है, क्यों न अब उनका विवाह किया जाये। मां ने उनसे विवाह के लिये कहा परंतु दादाजी ने बातों बातों में शादी की बात टाल दी। मां ने कई बार उन्हें समझाया परंतु दादाजी आनाकानी करते रहे। वे मां से कहते थे, 'मुझे तो प्यास है पिया मिलन की, अखियां हरिदर्शन की प्यासी, मुझे तुम आशीर्वाद दो कि मैं जिस प्रियतम की खोज में हूं उसे पाऊं, उसके गीत गाऊं। प्रभु प्राप्ति के लियेः छुट्टियों के बाद, जब दादा कलकत्ता आये तब वहां उन्हें नालूदा सत गुरु के रूप में प्राप्त हुए। उनके चरण कमलों में बैठकर दादा ने आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि की। नालूदा एक महान दार्शनिक, वरिष्ठ विद्वान, ब्रह्मज्ञानी एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे साथ वे अत्यंत सरल प्रकृति के सत्पुरुष थे। आडंबर से हट, दादा जी गुरु की असीम अनुकंपा से भक्ति एवं ज्ञान के पथ पर अग्रसर होते रहे। कई लोग उनका प्रवचन सुनने के लिये आते थे। माताजी से स्नेह और ममतापूर्ण कई पत्र इनके पास आते रहे परंतु दादाजी अपनी साधना में तल्लीन रहे।29 वर्ष की आयु में दादाजी को बर्लिन में विश्व धर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण मिला. यह सिंध के लिये भी गौरव की बात थी कि सिंधी युवा प्राध्यापक को विदेश में होने वाले सम्मेलन का निमंत्रण मिला। दादाजी ने बर्लिन के लिये प्रस्थान किया। विदेशी दादाजी का विद्वातापूर्ण व्याख्यान सुनकर मंत्रमुग्ध हो गये। दादाजी ने अपने भाषण में वेदों और उपनिषदों का संदेश दिया। आध्यात्मिक उन्नति पर विशेष बल दिया। उन्होंने 6 मास यूरोप की यात्रा की। उस यात्रा के दौरान दादाजी ने यहां भारतीय संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, भक्ति, कर्म इत्यादि पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिये। बहुतेरे लोग उनकी प्रेम की डोरी में बंध गये। सन् 1918 में दादाजी ने अमीरी वस्त्रों का त्याग कर स्वदेशी खादी के वस्त्रधारी बन गये और अपने पूर्ण वस्त्र गरीबों में बांट दिये। उन्होंने लोक कल्याण के लिये उपासना वर्ग आरंभ किया। साथ साथ टाईम पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका न्यू विशेषकर धार्मिक विषयों पर लेख दिये जाते है, में दादाजी अलग अलग स्थानों पर ज्ञान भक्ति थे। इत्यादि विषयों पर व्याख्यान देकर लोगों का मार्गदर्शन करने लगे। उन्होंने कई साधकों को आत्मोन्नति पर अग्रसर किया और प्रभु प्राप्ति के लिये पथ प्रदर्शन किया।

निर्भयता का संदेश : सारे देश में आजादी का आंदोलन जोर शोर से चल रहा था। अब दादाजी न केवल भक्ति क्षेत्र में राष्ट्र की सेवा के लिये तत्पर हुए। देश के स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने सक्रिय भाग लिया. वे राष्ट्र नायक लोकमान्य तिलक एवं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की विचारधारा से अत्यंत प्रभावित हुए। दादाजी ने अपने लेखों एवं व्याख्यानों द्वारा लोगों में आजादी के प्रति जागृति पैदा की और उनमें राष्ट्रीय चेतना फूंकी। उन्होंने विदेशी विस्तुओं का प्रचार किया। लोकमान्य तिलक जब सिंध में गये तब उन्होंने करांची में खालिकडिने सभागृह में अत्यंत उत्साहपूर्वक व्याख्यान दिये। उस सभा में अध्यक्ष भी दादाजी थे। दादाजी ने स्वयं खादी के वस्त्र पहने और आजीवन खादी के पोशाक पहनते थे। दादाजी ने अपनी सिंधी एवं अंग्रेजी कविताओं द्वारा भी भारतीयों में राष्ट्रभक्ति की भावना फूंकी। वे बंग भंग के विरूद्ध चलाए गये आंदोलन से भी संबद्ध थे। उन्होंने भारत के भिन्न भिन्न नगरों में जाकर भारतीयों को राष्ट्रीयता और निर्भयता का संदेश दिया। मीरा विद्या हलचल : दादाजी के ऋषि तुल्य जीवन के कारण जनता में इनके प्रति श्रद्धा व प्रेम बढ़ता गया और जनता ने उन्हें दादा वासवाणी और साधुवासवाणी शब्दों द्वारा संबोधित किया। महर्षि कर्वे जब सिंध में आये तब एक उत्सव का आयोजन किया गया, उसकी अध्यक्षता भी दादजी ने की। दादाजी को कोलंबो में होने वाले एशिया शांति सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण दिया गया. दादाजी तो विश्व शांति के अलमबरदार थे। वे इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये कोलंबो गए। वहां उन्होंने गौतम बुद्ध का संदर्भ देते हुये शांति और प्रेम का संदेश दिया. कोलंबो के आनंद कालेज में उनका स्वागत किया गया. दादाजी ने कोलंबो में अलग -अलग स्थानों पर व्याख्यान दिये। उनकी विद्धता वाचस्पत्य एवं वाग्मिता से लोग अत्यंत प्रभावित हुये। दादा जी कोलंबों से लौटे, तो फिर भारत के भिन्न -भिन्न नगरों उन्हें निमंत्रण आये। दादा जी फिर मद्रास एवं अन्य नगरों में गये और वहां प्यासों की प्यास बुझायी। कलकत्ता में गीता जयंती उत्सव में भी दादा जी ने विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिये। विद्या मनुष्य का तीसरा नेत्र है। दादाजी चाहते थे कि विद्यार्थियों को सच्ची विद्या मिले। इस विचार से उन्होने हैदराबाद में मीरा विद्या हलचल आरम्भ की और उस सिलसिले में मीरा हाई स्कूल की भी स्थापना की। विद्या मंदिर में विद्यार्थियों को न केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाता था, परंतु विद्यार्थियों में प्रार्थना, पवित्रता, सत्य, स्नेह, सेवा सादगी के बीज बोये जाते थे।

निर्वासन की स्थिति में : दादा जी के नेतृत्व में हलचल प्रगति के पथ पर अग्रसर होती रही। हजारों विद्यार्थियों के जीवन को नया मोड़ मिला। न केवल हैदराबाद में परंतु सिंध के अन्य नगरों मे भी दादा जी की इस मीरा हलचल का प्रभाव पड़ा।

देश के विभाजन के कारण सिंध की फिजा बदल गयी। अपनी मातृभूमि सिंध में ऐसी कट्टरता एवं अत्याचार देखकर, दादा जी ने अपने वतन को छोड़ने का फैसला किया, दादाजी अब हैदराबाद से कराची में आये फिर कराची से दादाजी, दादा जशन जी, बहन हरी, दादी शांति और बहन सती श्री दुर्गादास के साथ वायुयान द्वारा बंबई आये।

विभाजन के पश्चात अनेक सिंधी हिन्दू अपना सर्वस्त्र सिंध में छोड़कर भारत के भिन्न -भिन्न नगरों में आकर बस गये। कई लोग जलयान द्वारा बंबई आये सरकार की ओर से उन लोगों को अलग -अलग कैम्पों में बसाया गया। दादा जी उन दुखी भाइयों की देखरेख करने के लिये कुर्ला कैम्प, मूलुंड कैम्प, अकबर कैम्प, कल्याण कैम्प एवं अन्य कैम्पों में गये, जहां उन्होने पीड़ित सिंधी समुदाय को सांत्वना दी, स्नेह दिया और कुछ जरूरत मंदों को सहायता भी की।13 फरवरी 1949 को दादाजी पूना की पुण्य भूमि में पधारे। अब उन्होंने वहां सत्संग और विभिन्न कार्य प्रारंभ किये।

प्रतिदिन प्रभु प्रार्थना : प्रेमियों और शिक्षा शास्त्रियों के अनुरोध पर दादा जी ने 'मीरा कालेज फार गर्ल्स' प्रारम्भ किया जहां बहनों को पवित्र वातावरण में उच्च शिक्षा दी जाती है। वे अत्यंत भाग्यशाली है कि उन्हें दादा जशन वासवाणी जैसे प्राचार्य प्राप्त हुये है जो करूणा और प्रेम की मूर्ति है। भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी है। उनका ओजस्वी चेहरा स्नेह स्निग्ध मुस्कान मंत्र मुग्ध करने वाली वाणी विद्यार्थियों में नव जीवन का संचार करती है। बैरिस्टर श्री होतचंद्र आडीवाणी भी इस मीरा हलचल में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे है। साधु वासवाणी विद्यासागर की योजना बनाई गई है जो शीघ्र ही कार्यान्वित होगी।

साधु वासवाणी मिशन के तत्वाधान में अब पूना की पुण्य मीरा भूमि में एक प्राथमिक सिंधी शाला दो माध्यमिक शालायें (एक सिंधी माध्यम और एक अंग्रेजी माध्यम) बाल मंदिर और बहनों के लिये मीरा कालेज चल रहे है। इस शैक्षणिक संस्थाओं में विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण, बौद्धक मानसिक एवं शारीरिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रतिदिन प्रभु प्रार्थना के साथ ही स्कूलों एवं कालेजों का कार्य प्रारंभ होता है।

ब्रह्मलीन : दादा जी महान कर्मयोगी थे। उनकी प्रेरणा से मीरा भूमि कर्मभूमि बन गयी है, जहां 'मीरा बाल मंदिर' 'मीरा स्कूल' 'मीरा कालेज' 'मथुरीबाई महबूबाणी छात्रावास, 'राधाकृष्ण दया दवाखाना','मंधा राम खेमलाना दवाखाना , शांति क्लिनिक, मूलचंद उद्धवदास थधानी मैथलाजीकल क्लिनिक ', 'होम्योपैथी दवाखाना,' 'कल्याण नारीशाला ', जीवन दया एवं अन्य सेवा के कार्य चल रहे है। सेवा के साथ-साथ उच्च कोटि का साहित्य भी प्रकाशित हो रहा है। 16 जनवरी 1966 ई. में दादा वासवाणी बह्मलीन हुये।

दादाजी न केवल महान संत थे किंतु वे समजा सुधारक भी थे। दहेज की कुप्रथा ने समाज को सत्यानाश किया है। दादाजी ने इस समस्या को हल करने के लिये भी प्रयत्न किया। सिंध के भिन्न भिन्न नगरों में इस कुप्रथा के विरूद्ध मार्मिक व्याख्यान दिए। बहनों से अपील की कि अपनी बहुओं को मत सताओ, उन्हें अपनी बेटी सरीखा स्नेह दो। अपने बेटों को बेचना बंद करो। अब दादा साधु वासवाणी जी के धर्म पीठ के अधिकारी ददा जे.पी. वासवाणी है। वे भी महान कर्मयोगी संत है, विद्वान है, भक्ति एवं ज्ञान के भंडार है, साहित्यकार है, कवि है, दार्शनिक है, दीन दुखियों के मित्र, प्रेम व करुणा के सागर हैं।

सामाजिक-क्रांति अभियान

प्राचीन काल में परिवार का मात्र एक सदस्य कमाकर लाता था अपने पूरे परिवार के भरण पोषण के साथ अपने कुटुम्ब की रक्षा करता था। वह अकेले अपने परिवार के दस लोगों का पेट भरता था। आज उसी परिवार के दस लोग मिलकर अपने पालक को दो वक्त की रोटी नहीं खिला पाते। उन्हें भरण पोषण एवं जीने के लिये आशा की किरण भी नहीं दिखाई देती, अपने साथ रखने में बोझ समझते है। आखिर क्यों ?

निर्धन, निराश्रित निष्कासित असहाय, विधवा, महिलाओं को गुजर बसर करने के लिये रोजी रोटी के साथ रहने के लिये सुरक्षित स्थान की तलाश है। उनका आज शोषण हो रहा है। आखिर क्यों और कब तक ? गरीब वर्ग के लिये रोजी-रोटी और मकान की जरुरत है। उनके लिये सामाजिक सेमिनार में विचार करके उनकी प्रगति एवं रोजगार तथा आवास हेतु ठोस योजना बनाकर कार्य रुप में अतिशीघ्र परिणित करना चाहिए। सन्त कंवरराम की तरह अपनी आमदनी में से बेसहारा गरीबों की मदद करके उन्हें आत्मनिर्भर बनाना चाहिए।

वर्तमान समय में युवा पीढ़ी एवं असहाय लोगों को मार्गदर्शन देने वाली साफ -सुथरी (निष्कलंक) समाजसेवी संस्थाओं, समाज सेवकों - सेविकाओं की आवश्यकता है। शासकीय योजनायें तो है, लेकिन उनकी विधिवत जानकारी लोगों के पास नहीं है साथ ही साथ उनका लाभ जरुरत- मंद लोगों तक पहुंचने के पहिले ही योजना बनाने तथा उसका पालन कराने में अधिकतर खर्च हो जाता है। यदि शोषित, पीड़ित , दलित लोगों को समय पर सहायता नहीं मिली तो समाज में बुराईयां पैदा होगी। जो समाज एवं देश के लिये नासूर बन जायेगी, फिर उनका इलाज नहीं हो पायेगा।

स्वार्थी लोग अपने मद में अपनी अपनी ढपली बजाकर स्वयं के हित में राग अलाप रहे हैं। वे अच्छी तरह जानते है कि वे ''मुट्ठी बांध के आये थे हाथ पसारे जायेगें''। सच्ची समाज सेवा हेतु जो लोग प्रयास करना चाहते है उनकी कोई पूछ परख नहीं होती, उनके विचारो एवं प्रयासो की कद्र नहीं की जाती। उनके कार्यो में बाधा पहुँचायी जाती है क्यों ?

सामाजिक-क्रांति अभियान के अन्तर्गत समाज की युवा पीढ़ी में अमर शहीदों, महान विभूतियों के जीवन परिचय एव सिन्धु संस्कृति तथा सामाजिक क्रांति में सर्वोदय सेवादल के माध्यम से समाज एवं देश भक्ति के लिये निःस्वार्थ भावना से सेवा करने का संकल्प ले। हमारे देश की युवा पीढ़ी एवं निःस्वार्थ समाज

ये कहानी है सिन्ध के संग्राम की,ये कहानी है शहीदों के बलिदान की